गांधीजी

लेखक

जुगतराम दवे

अनुवादक

काशिनाथ त्रिवेदी

नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार, ५,०००

[illegible]

जनवरी, १९६१

प्रकाशक की ओर से

आजतक नवजीवन कार्यालय ज़्यादातर गुजराती और कुछ-कुछ अंग्रेज़ी पुस्तकें प्रकाशित करता आया है। इस पुस्तक से वह मर्यादित रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी में पुस्तक-प्रकाशन के कार्य का श्रीगणेश करता है। और इसमें उद्देश्य यह है कि शुद्ध और शिष्ट राष्ट्रभाषा में स्वराज्य को पुष्ट करनेवाला साहित्य जनता के लिए सुलभ किया जाय।

आजतक इस कार्यालय ने कई ऐसी किताबें निकली हैं, जो राष्ट्रभाषा में भी निकली होतीं, तो स्वराज्यप्रेमी जनता उनसे फ़ायदा उठा सकती; लेकिन वैसा हुआ नहीं। इसलिए ख़याल आया कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी इस कार्य को हाथ में लेने की ज़रूरत है। इसीलिए यह पहली पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। इसके बाद हाथ में ली हुई नीचे लिखी किताबें जैसे-जैसे तैयार होती जायेंगी, वैसे-वैसे उन्हें छपाने का इरादा है।

एक धर्मयुद्ध : श्री. महादेव देसाई

सयानी कन्या से : श्री. नरहरि परीख

जीवित त्योहार : श्री. काका कालेलकर

आशा है, हमारे ये प्रकाशन हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलनेवाली जनता को पसन्द आयेंगे।

२ अक्तूबर, १९४१

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार, ५,०००

प्रकाशक की ओर से

आजतक नवजीवन कार्यालय ज़्यादातर गुजराती और कुछ-कुछ अंग्रेज़ी पुस्तकें प्रकाशित करता आया है। इस पुस्तक से वह मर्यादित रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी में पुस्तक-प्रकाशन के कार्य का श्रीगणेश करता है। और इसमें उद्देश्य यह है कि शुद्ध और शिष्ट राष्ट्रभाषा में स्वराज्य को पुष्ट करनेवाला साहित्य जनता के लिए सुलभ किया जाय।

आजतक इस कार्यालय से कई ऐसी किताबें निकली हैं, जो राष्ट्रभाषा में भी निकली होतीं, तो स्वराज्यप्रेमी जनता उनसे फ़ायदा उठा सकती; लेकिन वैसा हुआ नहीं। इसलिए ख़याल आया कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी इस कार्य को हाथ में लेने की ज़रूरत है। इसीलिए यह पहली पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। इसके बाद हाथ में ली हुई नीचे लिखी किताबें जैसे-जैसे तैयार होती जायेंगी, वैसे-वैसे उन्हें छपाने का इरादा है।

एक धर्मयुद्ध : श्री. महादेव देसाई

सयानी कन्या से : श्री. नरहरि परीख

जीवित त्योहार : श्री. काका कालेलकर

आशा है, हमारे ये प्रकाशन हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलनेवाली जनता को पसन्द आयेंगे।

२ अक्तूबर, १९४१

बालमित्रों से

पिछले बारह बरस से गुजरात के बालक इस पुस्तक को बड़े चाव के साथ पढ़ते आ रहे हैं। बारह बरस पहले श्री जुगतरामभाई ने इसे गुजरात के हमारे बालमित्रों के लिए लिखा था। उन्हीं दिनों मैंने इसका एक अनुवाद किया था, जो बाद में कहीं लापता हो गया। बारह साल बाद अबकी मुझे मौक़ा मिला और मैंने इसका दुबारा अनुवाद किया।

पुस्तक आपके हाथ में है। आप इसे पढ़िये। उत्साह और उमंग के साथ पढ़िये। बार-बार पढ़िये और पढ़कर गांधीजी के जीवन को समझने की कोशिश कीजिये।

ईश्वर करे, पूज्य गांधीजी के जीवन की ये झाँकियाँ हम सबमें से हरएक को ऊँचा उठाने और आगे बढ़ानेवाली हों!

गांधी-सप्ताह
ता. २-१०-'४९

काशिनाथ त्रिवेदी

प्रस्तावना

पूज्य गांधीजी की साठवीं जयन्ती की याद में ये रेखाचित्र पहली बार लिखे गये थे। तबसे बरसों बीत चुके हैं, और ईश्वर की करुणा से गांधीजी का जीवन बालक से भी अधिक जोश के साथ बढ़ता रहा है।

स्वभावतः इस अवसर पर कुछ नये रेखाचित्र इसमें शामिल किये हैं। पुराने चित्रों की वस्तु और क्रम में भी कुछ परिवर्तन किये हैं।

गुजरात के बालक इसे उमंग के साथ पढ़ें और बापूजी की आत्मा को सुख पहुँचानेवाले बनें।

वेड़छी आश्रम
उद्योगशाला
ता० १३-८-१९३९

जुगतराम दवे

सूची

गांधीजी

१

कहाँ के हैं ?

अगर कोई पूछे—'गांधीजी कहाँ के हैं ?'
तो पोरबन्दर सबसे पहले कह उठेगा—'मेरे
यहाँ के हैं। यहीं उनका जनम हुआ है।'
सागर के उस पार से फिनिक्स और टॉल्स्टॉय
आश्रम पुकार उठेंगे—'भाई ! उनका सच्चा जनम
तो हमारे यहाँ हुआ। क्या इतने ही में भूल गये ?'
अहमदाबाद कहेगा—'लेकिन आश्रम तो
उन्होंने मेरी साबरमती के किनारे बसाया था न ?'
पूना अपना अधिकार जताते हुए कहेगा—
'यरवड़ा का जेल तो मेरा है न ? बापू का 'यरवड़ा
मंदिर', उनका वह 'जेल महल', क्या इस तरह
भूल जाने की चीज़ है ?'

बिहार का किसान क्यों पीछे रहने लगा ? वह
कहेगा—'आपकी जो मर्ज़ी हो, कह लें; मगर
गांधीजी हैं तो हमारे ! आपको क्या पता कि हमारे

नील के खेतों में उन्होंने कितने-कितने चक्कर काटे हैं?'

क्या पंजाब चुपचाप इन दावों को सह सकता है? नहीं, वह अपनी बुलन्द आवाज़ से पूछेगा—'क्या आप इस हकीक़त से इनकार करना चाहते हैं कि गांधीजी को जगानेवाला, होश में लानेवाला, मेरा जलियाँवाला बाग़ ही है?'

कलकत्ता कहेगा—'लेकिन भाई, असहयोग का बिगुल तो मेरे आँगन में बजा था न?'

बंबई कहेगी—'पर मेहरबान, सत्याग्रह का आरंभ करने तो वे मेरे ही घर आये थे न?'

चम्पारन का दावा भी सुनने लायक होगा। वह कहेगा—'नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ भला कौन सुनेगा? पर सच तो यह है, कि गांधीजी ने लड़ाई के लिए मैदान मेरा ही चुना था।'

इसी तरह दिल्ली भी गांधीजी को अपना समझती है, क्योंकि गांधीजी ने अपने उपवास के पवित्र इक्कीस दिन यहीं बिताये थे। बेलगाँव को अपना [illegible] किसीसे कम नहीं मालूम होता। हिन्दुस्तान [illegible] बेलगाँव की महासभा ने ही

गांधीजी को पहनाया था न? और राजकोट, जहाँ उन्होंने अपने प्राणों की बाज़ी लगाई थी, वह भी तो उन्हें अपना ही समझता है।

इन सारी बातों को सुनकर पहाड़ों का राजा हिमालय होठों में मुसकराता है। वह कहता है—'कौन इन लोगों के मुँह लगे? इन बेचारों को क्या पता कि गांधीजी मन ही मन किसके लिए तड़पा करते हैं?'

पर धन्य है, उस छोटे-से सेवाग्राम को! बीच हिन्दुस्तान में बसे हुए इस नन्हें-से गाँव का कोई नाम तक नहीं जानता था। औरों की तरह न वह अपना दावा लेकर आगे बढ़ा, न झगड़ा, न फ़रियाद की। फिर भी बड़ा भागवान है वह; कि गांधीजी आज उसीको अपनाये हुए हैं। इसीसे न साबरमती का सन्त अब सेवाग्राम का सन्त कहलाता है?

२

जाति

वैसे गांधीजी मोढ़ बनियों की जात में पैदा हुए हैं। पर वे खुद अपने को क्या कहते हैं?

एक बार सरकार ने उनपर राजद्रोह का मामला चलाया। अहमदाबाद की अदालत में मुकदमे की सुनवाई हो रही थी। अदालत में न्यायाधीश (मजिस्ट्रेट) अपराधी का नाम-पता पूछता ही है। गांधीजी से भी पूछा गया:

'आपका नाम क्या है?'

'मोहनदास करमचंद गांधी।'

'आप रहते कहाँ हैं?'

'सत्याग्रह आश्रम, साबरमती।'

'आपका पेशा क्या है?'

'किसानी और जुलाहागिरी।'

यह अनोखा जवाब सुनकर न्यायाधीश सन्न रह गये। जनता दंग रह गई!

३

पुतलीबाई

गांधीजी की माँ का नाम पुतलीबाई था। वे बड़ी भावुक थीं। बिना पूजापाठ किये कभी खाना न खाती थीं और रोज़ देवदर्शन के लिए मंदिर में जाती थीं।

महीने में दो बार बिलानाग़ा एकादशी का व्रत रखती थीं, और दिन में एक बार खाकर रह जाना तो उनके लिए बाँयें हाथ का खेल था।

बारिश के चार महिनों में, चातुर्मास में, वे तरह-तरह के व्रत-उपवास किया करती थीं—कभी चान्द्रायण, कभी एकाशन, कभी कुछ, कभी कुछ।

किसी साल चौमासे में वे कुछ कड़े व्रत भी किया करती थीं। एक व्रत यह था कि जिस दिन सूरज दिखाई दे जाय, उसी दिन खाना, वर्ना लंघन कर जाना।

ऐसी भोली और भावुक माँ पर बच्चों का बेहद प्रेम हो, तो उसमें अचरज ही क्या? जिस दिन माँ को भूखों रहना पड़ता, बच्चे दिन-दिन भर बादलों की ओर ही देखा करते, और ज्योंही सूरज दीखता, दौड़ कर माँ के पास खबर देने पहुँच जाते:

'माँ! माँ! दौड़ो, दौड़ो, सूरज निकला।' लेकिन माँ पहुँचें, पहुँचें, इतने में तो सूरज फिर बादलों में छिप जाता और यों माँ को कई बार भूखों रह जाना पड़ता।

मगर माँ बात की ऐसी तो पक्की थीं, कि दुनिया चाहे उलट जाये, खुद बीमार पड़ जायें, और जान चली जाये, तो भी व्रत तो व्रत ही रहता था!

ऐसी सयानी, ऐसी भली, ऐसी भोली और भावुक माँ थीं। उन गांधीजी का फिर क्या कहना था?

कस्तूरबा

शायद तुममें से कइयों ने गांधीजी को देखा होगा, पर कस्तूरबा को तो शायद बिरलों ही ने देखा हो! वे गांधीजी जैसे महापुरुष की पत्नी हैं। तुम सोचते होगे कि वे महारानी बन कर रहती होंगी। माताजी के नाते लोगों से अपने को पुजवाती होंगी। उनका ठाट-बाट ही कुछ निराला रहता होगा! आश्रम में रहते समय वे गांधीजी की बराबरी से बैठतीं और लोगों को दर्शन दिया करती होंगी! पर सचमुच ऐसी कोई बात नहीं। 'बा' का तो ढंग ही कुछ और है। वे कभी आगे आती नहीं। आश्रम में जाकर देखो, तो उन्हें कहीं न हीं, किसी काम में मशग़ूल पाओ! कभी रसोईघर रोटी बेलती दिखाई पड़ेंगी, कभी गांधीजी का खाना तैयार करती मिलेंगी, कभी किसी बीमार की सेवा में, तीमारदारी में, लगी होंगी। हाँ, जब कभी गांधीजी बीमार होते हैं, तो उनका सर दबाने का काम कस्तूरबा ही करती हैं, और ऐसे समय वे उनके पास ज़रूर दिखाई पड़ जाती हैं।

कस्तूरबा की यह आदत नहीं कि वे सभाओं में या जलसों में गांधीजी के साथ बराबरी से जायँ, और मंच पर खड़ी होकर भाषण करने लगें। उनका तो तरीक़ा ही कुछ और है। अक्सर तो वे जाती ही नहीं, मुक़ाम पर ही रहती हैं, पर जब जाती हैं, तो चुपचाप पीछे-पीछे जाती हैं, और सभा के किसी कोने में, बहनों के बीच, चुपके से बैठ जाती हैं। किसीको ख़याल तक नहीं होता कि ये कस्तूरबा हैं: गांधीजी की पत्नी हैं!

कस्तूरबा को बड़ी बन कर घूमने का ज़रा भी शौक नहीं। बड़प्पन के दिखावे से उन्हें कोई मतलब नहीं। वे तो एक ही बात जानती हैं— गांधीजी के पीछे-पीछे चलना और उनकी सेवा करना। सीता ने राम के लिए राजपरिवार का सुख छोड़ा, और जंगल की राह पकड़ी थी। कस्तूरबा भी इसी तरह सारे सुखों का त्याग करके गांधीजी के साथ आश्रमवासिनी बनी हैं।

इस ज़माने में यदि कहीं सती के दर्शन करने हों, तो कस्तूरबा के दर्शन कर लो।

५

परीक्षा

गांधीजी अंग्रेज़ी के दूसरे या तीसरे दर्जे में पढ़ते थे।

एक बार उनके स्कूल में कोई इन्स्पेक्टर इम्तहान लेने आये और उन्होंने गांधीजी की कक्षा के सभी छात्रों को अंग्रेज़ी के पाँच शब्द लिखाये।

वर्ग-शिक्षक पास में खड़े थे। वे घूर-घूर कर तिरछी निगाह से देख रहे थे कि कौन क्या लिख रहा है। उनकी छाती धड़क रही थी। वे डरते थे कि कहीं लड़कों ने ग़लत लिख दिया तो डाँट उन पर पड़ेगी। इन्स्पेक्टर कहेंगे: 'मास्टर पढ़ाना नहीं जानता।'

मास्टर ने देखा कि मोहनदास ने 'केट्ल' (Kettle) शब्द के हिज्जे ग़लत लिखे हैं। पर बेचारे क्या करते? वे घूमते-घामते मोहनदास के पास गये, और अपने बूट की ठोकर से उनका पैर दबा कर

इशारा करने लगे कि वह पासवाले लड़के की पट्टी देख लें। लेकिन मोहनदास तो इन बातों से कोसों दूर रहनेवाले थे। उन्हें खयाल तक न हुआ कि मास्टर चोरी का इशारा कर रहे हैं। फिर वह कैसे समझ लेते कि शिक्षक दूसरे का देख कर सही लिखने को सुझा रहे हैं?

दूसरे दिन शिक्षक ने मोहनदास से कहा—'निरे बुद्धू हो जी तुम! कितने इशारे किये, मगर तुम्हारी समझ में कुछ ख़ाक भी न आया।'

गांधीजी ने शिक्षक से तो कुछ नहीं कहा, मगर अपने मन में यह ज़रूर समझ लिया कि शिक्षक की बात मानने लायक़ न थी; वह ग़लत थी और पाप की जड़ थी।

६

सत्य

बचपन ही से गांधीजी को सत्य या सचाई बहुत प्रिय रही है।

उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि कैसे वे अपने बचपन में कुछ दिनों के लिए बुरी सोहबत में पड़ गये थे और फिर कैसे उससे छूटे।

बचपन में अपने साथी-संगियों के साथ गांधीजी को भी बाज़ार का खाने और बीड़ी वग़ैरा पीने का शौक़ लग गया था। ऐसे कामों के लिए माँ-बाप से तो पैसे माँगे नहीं जा सकते। इसलिए इन लोगों ने घर के नौकरों की जेब से पैसे चुराना सीख लिया।

मोहनदास को ये काम दिल से पसन्द नहीं थे; मगर क्या करते? दोस्तों को खाते-पीते देख कर मन मचल पड़ता था, और दिल बेकाबू हो ज़ाता था।

यों होते-होते खाने-पीने का खर्च, और खर्च के साथ क़र्ज़ बढ़ने लगा। दूकानदारों के तकाज़े शुरू

हो गये। अब क्या हो? खयाल हुआ, नहीं, डर-सा लगने लगा कि कहीं दुकानदार दस जनों के सामने पैसे न माँग बैठे! कहीं घर जाकर पिताजी से न कह बैठे!

नौकरों की जेब से तो पैसे दो पैसे ही मिल पाते थे; और कर्ज़ बेहद बढ़ गया था। अब क्या हो?

दोस्तों की टोली परेशान हो उठी। इस टोली में मोहनदास के बड़े भाई भी शामिल थे। इस आफ़त से बचने का उन्हें एक ही उपाय सूझा, और वह चोरी का उपाय था। उन्होंने कहा — 'मेरे हाथ में यह सोने का कड़ा है। इसमें से एक तोला सोना कटवा कर कर्ज़ चुकाया जा सकता है, और बात भी छिपाई जा सकती है।'

मोहनदास को यह अटपटा तो लगा; लेकिन विरोध करने की उनकी हिम्मत न हुई। उन्होंने कड़ा कटने दिया।

इस तरह कर्ज़ तो अदा हो गया, पर जिसे [illegible] [illegible] थी, वह तो मन-ही-मन बेचैन हो उठा!

[illegible] उसको पुकार उठी — 'अरे, मैं इस चोरी में क्यों शामिल हुआ? छि छि का मामला, छि का

बीड़ी पी ! भाड़ में जाय यह खाना, और धूल में मिले यह धुआँ उड़ाना । '

फिर ख़याल आया—'हाय-हाय ! कैसी ग़लती हुई ! ख़ुद ठगाया और पिताजी को भी ठगा । '

मोहनदास उदास रहने लगे—उन्हें न खाना अच्छा लगता था, न पीना । जो ग़लती हो गई थी, उसका ख़याल दिनरात दिल को कचोटा करता था ।

आख़िर उन्होंने तय कर लिया—'पिताजी के सामने जाकर अपनी ग़लती क़बूल करूँगा । वे नाराज़ होंगे, नाराज़ी सह लूँगा । मारेंगे, मार खा लूँगा । '

पिताजी के सामने जाकर मुँह से कुछ कहने की हिम्मत कैसे हो ? मोहनदास ने एक चिट्ठी लिखी । चिट्ठी में अपनी ग़लतियों का पूरा ब्योरा लिखा; ग़लतियाँ क़बूल कीं और पिताजी से माफ़ी माँगी । आँसू भरी आँखों और काँपते हाथों चिट्ठी पिताजी को दी । पढ़ते ही उनकी छाती भर आई । आँखें सजल हो उठीं । उन्होंने क़ुसूर माफ़ कर दिया, और अपने सत्यवादी बेटे को गले लगा लिया !

७

प्रह्लाद और हरिश्चन्द्र

इन दोनों सत्याग्रहियों की कथा पर गांधीजी बचपन ही से मुग्ध हैं। जो खुद सचाई से प्यार करता है, उसे सच बोलनेवालों की, सत्यवादियों की, कथायें क्यों न प्यारी लगेंगी ?

राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए कितनी तकलीफें उठाईं ? राज खोया, पाट खोया, जंगलों में मारे-मारे फिरे, स्त्री बेची, पुत्र बेचा, और फिर खुद भी चांडाल के हाथ बिक गये। रोंगटे खड़े करनेवाली मुसीबतें सहीं, लेकिन सचाई न छोड़ी। कहते हैं, गांधीजी ने बचपन में 'हरिश्चन्द्र' का एक नाटक देखा था। बस, जिस दिन वह नाटक देखा, उस दिन से वे हरिश्चन्द्र के ही सपने देखने लगे। हरिश्चन्द्र की याद आते ही वे अक्सर रो पड़ते थे। उन्होंने लिखा है कि आज भी यदि वे उस नाटक को पढ़ें, तो उनकी आँखें आँसुओं से भर आये बिना न रहें। वे कहा करते हैं कि हरिश्चन्द्र

की तरह दुःख सहने और तिस पर भी सचाई से तिलमात्र न हटने का नाम ही सत्य है।

गांधीजी को हरिश्चन्द्र से भी बढ़ कर प्रह्लाद की कथा प्यारी है। हरिश्चन्द्र तो राजा थे, अनुभवी थे और ज्ञानी थे।

लेकिन प्रह्लाद?

वह तो एक नन्हा-सा सुकुमार बालक था। राक्षस के घर पैदा होकर भी उसने भगवान् का नाम लेने की हिम्मत दिखाई थी। पिता ने उसे पहाड़ पर से फिकवाया, पर उसने रामनाम न छोड़ा। समुद्र में डुबोया, तो भी रामनाम न छोड़ा। जलते हुए खंभे से लिपटने को कहा गया, वह निधड़क लिपट गया, पर उसने रामनाम न छोड़ा।

गांधीजी प्रह्लाद के इस सत्याग्रह को हमेशा अपने सामने रखते हैं। और उठते-बैठते इसीका उदाहरण दिया करते हैं—'प्रह्लाद के समान सुकुमार बालक भी सत्याग्रह की शक्ति दिखा सकता है। सत्याग्रह के लिए न पहलवानों की-सी ताक़त ज़रूरी है, न राजा के-से सैन्यबल की आवश्यकता है।'

८

वैष्णव

अगर कोई गांधीजी से पूछे: 'आपका धर्म क्या है?' तो वे कहेंगे: 'वैष्णव।'

जो उन्हें नहीं जानते, उनको यह सुन कर आश्चर्य हो सकता है। क्योंकि गांधीजी न कभी मन्दिर में जाते हैं, न घर में देवता की पूजा करते हैं, न भगवान् को भोग लगाते हैं, और न ख़ुद गले में कण्ठी या माला पहनते हैं। तिस पर जात-पाँत का कोई ख़याल नहीं रखते — हर किसीके साथ बैठ कर खा लेते हैं।

भला, ऐसे आदमी को कोई वैष्णव कह सकता है?

मगर गांधीजी से पूछो, तो वे कहेंगे: 'भई, मैं तो अपने को वैष्णव ही मानता हूँ। नरसिंह मेहता ने वैष्णव के जो लक्षण बताये हैं, उनको मैं मानता हूँ और वैसा वैष्णव बनने की कोशिश करता हूँ।' गांधीजी कहते हैं:

वैष्णव जन तो तेने कहीए
        जे पीड़ पराई जाणे रे,
परदुःखे उपकार करे तोये,
        मन अभिमान न आणे रे । वैष्णव०
सकळ लोकमां सहुने वन्दे,
        निन्दा न करे केनी रे;
वाच काछ मन निश्चळ राखे,
        धन धन जननी तेनी रे । वैष्णव०
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी,
        पर स्त्री जेने मात रे;
जिह्वा थकी असत्य न बोले,
        परधन नव झाले हाथ रे । वैष्णव०
मोह माया व्यापे नहि जेने,
        दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे;
रामनामशुं ताळी रे लागी,
        सकळ तीरथ तेना तनमां रे । वैष्णव०
वणलोभी ने कपटरहित छे,
        काम क्रोध निवार्या रे;
भणे नरसैंयो, तेनुं दरशन करतां,
        कुळ एकोतेर तार्या रे । वैष्णव०

वैष्णव वह है, जो दूसरों की तकलीफ़ को समझता है; दुःख में दूसरों की मदद करता है; पर मन में ज़रा भी गुरूर नहीं आने देता।

वैष्णव वह है, जो दुनिया में सबके सामने झुकता है, किसीकी निन्दा नहीं करता, और ख़ुद मन, वचन और शरीर से निश्चल रहता है।

वैष्णव वह है, जो सबको बराबरी की निगाह से देखता है, जो तृष्णा छोड़ चुका है, जो पराई औरतों को माँ समझता है, ज़बान से कभी झूठ नहीं बोलता, और पराये धन को कभी हाथ नहीं लगाता।

वैष्णव वह है, जिस पर मोह और माया का कोई असर नहीं होता, जिसके मन में पक्का वैराग्य जमा हुआ है, और जिसे रामनाम की लौ लग चुकी है।

वैष्णव वह है जो छल-कपट से दूर रहता है, लालच को पास नहीं फटकने देता, और काम-क्रोध पर सवारी करके रहता है।

नरसिंह मेहता कहते हैं कि जो ऐसा वैष्णव है, उसकी जननी को धन्य-धन्य का धन्यवाद है; उसके शरीर में सभी तीरथ समाये हुए हैं; और उसका दर्शन करने से कुटुम्ब की इकहत्तर पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है।

भी किये। यही सुधरा हुआ, सुन्दर, नाज़ूक, नन्हा चर्खा आज 'यरवड़ा चक्र' के नाम से मशहूर है।

चर्खे में वह ताक़त है कि उससे देश के करोड़ों नंगे अपना तन ढँक सकते हैं, और भूखे भरपेट भोजन पा सकते हैं। चर्खे के सूत में देश को स्वराज्य दिलाने की शक्ति है। इसीसे गांधीजी उसे कामधेनु कहते हैं, और उसकी हलकी, मीठी गूँज में मीठे-से-मीठे संगीत का अनुभव करते हैं।

देश में करोड़ों ऐसे ग़रीब हैं, जो दिन-रात पसीना बहाने पर भी भरपेट खा नहीं पाते। उनके इस दुःख का अनुभव हमें कैसे हो सकता है? तभी न, जब हम भी उनकी तरह कुछ मेहनत करें, कुछ पसीना बहायें! इसीलिए गांधीजी कहते हैं कि जिन्हें देश के ग़रीबों का दुःख दूर करना है, और उनके दुःख में शरीक होना है, उन्हें हर रोज़ कम से कम आध घण्टा सूत ज़रूर कातना चाहिए।

हिन्दुस्तान के तिरंगे झंडे के बीचोंबीच चर्खा छपाने का ख़याल भी गांधीजी का ही है। झंडे पर छपा हुआ वह चर्खा दुनिया के बीच यह ऐलान करता है कि जो स्वराज्य करोड़ों ग़रीबों का है, वही सच्चा स्वराज्य है।

उनके जवाब लिखते हैं, या 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के लिए लेख लिखते हैं।

भोजन के समय परोसने का काम वे बड़े चाव से करते हैं।

दोपहर को वे नियम से चर्खा चलाते हैं। दिन में कम से कम एक घण्टा, और कम में कम १६० तार कातने का उनका नियम है।

शाम को सूरज डूबने से पहले ही वे भोजन कर लेते हैं, और भोजन के बाद थोड़ा घूम लेते हैं।

शाम को सात बजे जब प्रार्थना की घण्टी बजती है, वे घूम कर वापस आ जाते हैं।

इसके सिवा, गांधीजी अपने समय-पत्रक के अनुसार कभी आश्रम की बहनों को, कभी विद्यार्थियों को और कभी बाल-मंदिर के बालकों को कुछ पढ़ाते-लिखाते भी हैं।

इस तरह सारा दिन काम करके रात साढे नौ बजे वे सो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी काम इतना ज़्यादा हो जाता है कि रात में देर तक जाग कर उसे पूरा करना पड़ता है। यों, देर से सोने पर भी सुबह चार बजे तो वे उठते ही हैं। इसमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

११

सत्याग्रही की दिनचर्या

ऊपर तुम देख चुके कि एक सत्याग्रही की रहन-सहन और उसकी दिनचर्या कैसी होती है। उसका एक भी मिनट निकम्मा नहीं जाता। अपना एक क्षण भी वह आलस्य में नहीं बिताता।

गांधीजी की दिनचर्या की दूसरी खूबी यह है कि वे अपने रोज़ के काम का समय-पत्रक हर रोज़ बनाते हैं, और उसके मुताबिक़ एक-एक मिनट की पाबंदी रखते हैं। जिस काम के लिए जो समय तय कर लेते हैं, उसे ठीक उसी समय शुरू करते हैं, और जितना समय उसे देना होता है, उतना ही देते हैं। अपना सारा दिन वे घड़ी के काँटे पर, घड़ी की-सी नियमितता के साथ बिताते हैं। फिर, दिन-भर जितना काम वे करते हैं, उसका रोज़नामचा भी बराबर लिखते हैं; और रात में सोने से पहले उसे एक बार देख कर और पूरा करके सोते हैं।

१२

मौनवार

गांधीजी हर सोमवार को मौन रखते हैं, यानी उस दिन वे किसीसे बोलते या बातचीत नहीं करते। कैसा भी ज़रूरी काम क्यों न आ पड़े, वे अपना मौन नहीं तोड़ते। ज़रूरत पड़ने पर जो कहना होता है, कागज़ पर लिख कर कह देते हैं, लेकिन बोलते तो हरगिज़ नहीं।

हफ़्ते में एक दिन इस तरह मौन रहने से उन्हें बड़ी शांति मिलती है। उस दिन न किसीसे बातचीत करनी पड़ती है, न सभाओं में भाषण देने पड़ते हैं, और न कहीं घूमने-भटकने जाना पड़ता है। इस तरह उस दिन हलचल या चहल-पहल का सारा काम बंद रहता है।

मौन-दिन की इस शांति में उनको काफ़ी आराम मिल जाता है। लेकिन जानते हो, इस आराम का उपयोग वे किस प्रकार करते हैं?

आराम का यह दिन गांधीजी सोकर तो बिता
[न]हीं सकते । हफ्ते के अख़ीर में काम का जो ढेरों
[ब]ोझ बढ़ जाता है, मौन-दिन की शांति में उसीको
उतार कर वे हलके हो जाते हैं ।

यों, मौन-पूर्वक, चुपचाप, काम करने में जो
आनंद आता है, वह अनुभव करने की चीज़ है ।

१२
गांधीजी की विशेषतायें

गांधीजी की कुछ विशेषतायें, उनकी कुछ
ख़ासियतें, जानने लायक़ हैं ।

वे कभी धीमी या सुस्त चाल से नहीं चलते ।
उनकी चाल में हमेशा फुर्ती रहती है ।

वे कभी झुक कर या सिमट कर नहीं बैठते ।
हमेशा तन कर और स्थिर आसन से बैठते हैं ।

वे कभी मेज का सहारा लेकर नहीं लिखते ।
तन कर बैठते और घुटनों पर काग़ज़ रख कर ही
लिखते हैं ।

वे जो कुछ लिखते हैं, उसे दुबारा पढ़ कर ही आगे जाने देते हैं। एक छोटा-सा कार्ड लिखेंगे, तो उसे भी दुबारा पढ़ेंगे, जो कुछ घटाना-बढ़ाना होगा, घटायेंगे-बढ़ायेंगे; और तभी उसे डाकख़ाने जाने देंगे।

उन्हें सफ़ाई और सुघड़ता बहुत प्यारी है। यही वजह है कि वे अपने कपड़े-लत्ते और दूसरी चीज़ों को हमेशा बहुत ही साफ़ और सजावट के साथ रखते हैं।

गांधीजी हरएक काम को बड़ी ख़ूबी और बारीकी के साथ करते हैं।

वे कभी अपना फोटू खिंचवाने नहीं बैठते।

वे काम में कितने ही क्यों न मशग़ूल हों, फिर भी कोई बाल-गोपाल, कोई राजा बेटा, उनके पास जा पहुँचता है, तो वे उससे खेले बिना रह नहीं सकते।

बातचीत करते समय गांधीजी अक़सर ख़ूब खिलखिला कर हँसते हैं। हँसते क्या हैं, मानों फूल बखेरते हैं।

१४

आश्रम — १

अहमदाबाद गुजरात का राजनगर है। इसी राजनगर के नज़दीक साबरमती के किनारे गांधीजी का पुराना आश्रम है।

एक ज़माना था, जब इस आश्रम में गांधीजी रहते थे, कस्तूरबा रहती थीं, और दूसरे बहुतेरे भाई और बहन, बच्चे और बच्चियाँ भी रहती थीं।

आश्रम में गुजराती थे, महाराष्ट्री थे, पंजाबी और सिन्धी थे, मद्रासी और नेपाली भी थेः हिन्दुस्तान के सभी सूबों के लोग वहाँ रहते थे। यूरोप के गोरे व चीन और जापान के पीले लोग भी रहते थे।

वे सभी खादी पहनते और नियम से कातते थे।

वे सुबह चार बजे उठ कर प्रार्थना में आते और फिर शाम को सात बजे की प्रार्थना में भी शरीक होते। प्रार्थना में वे श्लोक-पाठ करते, भजन गाते और रामधुन की रट लगाते। वे गीता का पारायण करते; और अक़सर प्रार्थना के बाद गांधीजी का प्रवचन सुनते।

सभी आश्रमवासी एक साथ, एक जगह बैठकर

खाते। भोजन में मिर्च, मसाला, हींग आदि का बिलकुल उपयोग न करते। सादा और सुस्वादु भोजन आश्रम की विशेषता रहती। सुबह-शाम नियत समय पर सब खाने बैठते और शांतिमंत्र बोल कर खाना शुरू करते। ऐसे समय कई बार गांधीजी ख़ुद सबको परोस कर खिलाते।

आश्रम में हरिजन भी सबके साथ ही रहते और साथ ही काम करके आश्रम के भोजनालय में भोजन करते।

आश्रम में सफ़ाई का बहुत ख़याल रक्खा जाता। जहाँ-तहाँ थूकना, काग़ज़ फेंकना, जूठन गिराना या पेशाब करना मना था।

आश्रमवासी जहाँ-तहाँ पाखाना फिर कर आस-पास के जंगल को गन्दा नहीं करते। वे सुन्दर, हवादार और उजेले कमरों में पाखाने का प्रबन्ध करते हैं, और पाखाना फिरने के बाद मैले को साफ़ मिट्टी से ढँक देते हैं। आश्रमवासी अपने पाखानों की सफ़ाई ख़ुद ही करते हैं। इससे जो खाद मिलता है, उसके कारण आश्रम के बगीचे ख़ूब पनपते और लहलहाते रहते हैं।

१५

आश्रम — २

गांधीजी के साबरमतीवाले आश्रम में एक छात्रालय था। इस छात्रालय में देश-विदेश के विद्यार्थी आकर रहते थे। कोई कातना सीखता था, कोई पींजना सीखता था और कोई करघे पर हाथ से खादी बुनना सीखता था। कुछ विद्यार्थी कारखाने में बढ़ईगिरी का काम सीखते और चरखे वग़ैरा बनाते थे।

आश्रम में कई लड़के और कई लड़कियाँ रहती थीं। वे सभी उद्योग सीखते और साथ-साथ पढ़ते-लिखते भी थे।

आश्रम में बड़ी बहनों के लिए एक स्त्री-निवास था। वे रोज़ अपने निवास में इकट्ठा होतीं और प्रार्थना करतीं, कुछ देर लिखतीं-पढ़तीं और कातने-पींजने का काम भी करतीं। आश्रम का संयुक्त भोजनालय, जहाँ सभी आश्रमवासी मिल कर खाते थे, ये बहनें ही चलाती थीं। वे बारी-बारी से

रसोईघर में काम करतीं, और कोठार का अनाज साफ़ करने में मदद पहुँचातीं।

आश्रम में नन्हें-नन्हें बच्चों का एक बालमंदिर भी चलता; लेकिन उसके लिए अलग से कोई शिक्षक न रक्खा जाता। आश्रमवासिनी बहनें ही उस बालमंदिर का काम देखतीं।

आश्रम में एक सुन्दर गोशाला थी। गोशाला में बहुतेरी मोटी-ताज़ी गायें थीं। आश्रम में हमेशा गाय के दूध का ही उपयोग होता।

आश्रम का अपना एक छोटा-सा चर्मालय भी था। उसमें अपनी मौत मरे मवेशियों का चमड़ा कमाया जाता, और उसके चप्पल वग़ैरा बनाये जाते। जो ढोर क़त्ल किये जाते हैं, उनके चमड़े को काम में लाना, उनके क़त्ल में मदद पहुँचाना है। इसलिए आश्रमवासी इस अहिंसक चमड़े के जूते और चप्पल वग़ैरा ही काम में लाते हैं।

आश्रम की अपनी थोड़ी खेती-बाड़ी भी है। उसमें कुछ तो फलों के पेड़ लगाये गये हैं। कुछ साग-सब्ज़ी होती है, और खेतों में कुछ कपास व ज़ुवार वग़ैरा भी बोया जाता है।

इन सब कामों में आश्रम के भाई, बहन और बच्चे सभी पूरा-पूरा भाग लेते। वे बारी-बारी से कभी रसोईघर में काम करते, कभी गोशाला में गोबर उठाने जाते, कभी पाखानों की सफ़ाई करते, और कभी खेती-बाड़ी के काम में सहायक होते।

सुबह से शाम तक गांधीजी का आश्रम मधुमक्खी के छत्ते की तरह उद्योग से गूँजा करता। गांधीजी ने इसीलिए उसका नाम 'उद्योग-मंदिर' रख दिया, जो बहुत ही ठीक हुआ।

१६

नौकर

आम तौर पर लोग आजकल पानी भरने, बरतन मलने, झाड़ने-बुहारने, पीसने, रसोई बनाने, कपड़े धोने, कातने और पाखाना-सफ़ाई वग़ैरा करने से जी चुराते हैं, क्योंकि उनके ख़याल में ये सारे काम हलके हैं। फ़ुरसत रहते हुए भी वे इन कामों को हाथ नहीं लगाते, क्योंकि वे मानते हैं

कि ये सब हलके लोगों के करने लायक काम हैं। चुनाँचे वे इनके लिए नौकर रखते हैं, और उन नौकरों को हलका समझ कर उनके साथ ख़ुद हलकेपन का सलूक करते हैं।

गांधीजी किसी काम को हलका नहीं समझते। आश्रम शुरू करने से पहले भी उनके ख़याल इसी तरह के थे। यह नहीं कि उन्होंने कभी अपने घर में नौकर रक्खे ही न हों, पर नौकरों के साथ नौकर का-सा सलूक उन्होंने कभी नहीं किया।

बचपन में, जब वे बहुत छोटे थे, उनके घर रम्भा नाम की एक नौकरानी काम करती थी। गांधीजी आज भी उसे सगी माँ की तरह याद करते हैं। बचपन में इसी रम्भा ने गांधीजी को सिखाया था कि जब डर लगा करे, राम का नाम ले लिया करो; डर भाग खड़ा होगा। गांधीजी उसके इस उपदेश को अभी तक भूले नहीं हैं।

बैरिस्टरी पास करने के बाद गांधीजी कुछ दिन बम्बई में अपने कुनबे के साथ रहे थे। उस वक्त उन्होंने अपने यहाँ एक ब्राह्मण रसोइये को नौकर रक्खा था। ख़ुद विलायत से लौट कर आये थे। बड़े

शान से अंग्रेज़ी ठाट-बाट में रहते थे। मगर नौकर को नौकर नहीं समझते थे। आधी रसोई महाराज बनाता, आधी ख़ुद बनाते, साथ में रसोइये को कुछ सिखाते भी जाते और उसके संग बराबरी से बैठ कर खाना खाते। नौकर के नाते उससे किसी तरह का भेदभाव न रखते।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी काफ़ी कमाते थे। वहाँ उनका परिवार भी बहुत बड़ा था। फिर भी कपड़े धोने, और पाख़ाना सफ़ाई करने का काम गांधीजी और कस्तूरबा अपने हाथों करते थे। घर में महरों और मुहर्रिरों की कमी न थी; लेकिन वे सब घर के आदमी ही समझे जाते थे और उनके साथ वैसा ही सलूक भी होता था।

आश्रमवासी बनने के बाद तो नौकर न रखने और सारा काम ख़ुद करने का नियम ही बन गया। जिनका सारा जीवन ही सेवा के लिए है, उनके लिए नौकर क्या और मालिक क्या?